दलित जीवन की त्रासदी

(ओमप्रकाष वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' के संदर्भ में)

अमृत लाल जीनगर
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा (सिरोही) राजस्थान
e-mail: amritjinger@gmail.com

सारांष

हमारे देश में जाति व्यवस्था ने असंख्य दलितों को जीवन की मुख्यधारा से अलग कर दिया है। सदियों से सामाजिक रूप से अलग होकर वे बिना किसी असहाय जीवन जीने के लिए बाध्य हैं। दलित साहित्य उनके प्रति किए गए अत्याचारों एवं प्रताड़ना के लिए क्रूरता दिखाने का एकमात्र माध्यम है। वे जाति व्यवस्था के नाम से पीड़ित हैं। उनके जीवन को अपमान, दमन और भेदभाव के रूप में चिह्नित किया गया है। ऐसी ही 'जूठन' ओमप्रकाश वाल्मीकि की एक आत्मकथा है, जिसमें उन्होंने दलितों के शोषण को चित्रित किया है। दलित आत्मकथाएं एक प्रतिनिधि कहानी के रूप में समझी जाने वाली होती है, जहाँ साधारण या प्रतिनिधि दलित व्यक्ति अपनी कथा का उपयोग उन लोगों के लिए आवाज उठाने के लिए करता है, जो जाति के उत्पीड़न से चुस्त है। इस शोध आलेख में बताया गया है कि कैसे एक दलित लेखक ने अपनी आत्मकथा को माध्यम बनाकर जाति व्यवस्था की कठोर वास्तविकताओं को उजागर किया है। यह भारत में 'अछूत' के कष्टों और अपमानों को भी प्रदर्शित करता है कि कैसे वह मौलिक अधिकारों से वंचित रहे हैं।

शब्द कुंजी – दलित, जाति, जीवन, समाज, साहित्य।

दलित शब्द की व्युत्पत्ति 'दल्' धातु से हुई है। जिसका अर्थ पिछड़ा, शोषित, रौंदा हुआ, अविकसित अछूत आदि है। अर्थात जिसे दबाया गया, विकसित नहीं होने दिया गया, परम्परा व्यवस्था से उपेक्षित रखा गया, जिसका जीवन कीड़े–मकोड़े जैसा घृणित है, ऐसा मानव दलित है। इन्हें अस्पृश्य अंत्यज, दास, हरिजन, शूद्र आदि नाम भी दिए गए हैं।[1] वर्ण व्यवस्था, धर्म व्यवस्था को नकारने वाला विद्रोही संघर्षरत समाज दलित है।

दलित साहित्य से तात्पर्य–दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन को केन्द्र में रखते हुए साहित्यिक आंदोलन से है, जिसका सूत्रपात 'दलित पैंथर्स' से माना जा सकता है।[2] दलितों को हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर रखने के कारण न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। उन्हें अपने ही धर्म में अछूत या अस्पृश्य माना गया। दलित साहित्य की शुरूआत मराठी सें मानी जाती है। जहाँ 'दलित पैंथर्स आंदोलन' के दौरान बड़ी संख्या में दलित जातियों से आए रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं, पीड़ाओं, दुखों को कविताओं, निबंधों, जीवनियों, कटाक्षों, व्यग्यों तथा आत्मकथाओं आदि के माध्यम से पहुँचाया है।

प्रत्येक साहित्यिक लेखक का प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य न केवल सामाजिक मुद्दों पर प्रकाश डालना होता है बल्कि समाज की स्थिति को उन्नत करके चेतना व जागरूकता लाना होता है। वे समकालीन समाज से उनकी साहित्यिक रचनाओं के एक पहलू के रूप में एक निश्चित सामाजिक मुद्दे का चयन करते है, जो समाज की बुराइयों को खत्म करने के लिए मनुष्य की अंतरात्मा की सहायता करते है तथा हर किसी के लिए कुछ उम्मीद और आकांक्षा के साथ गुणवत्तापूर्ण जीवन प्राप्त करने के लिए एक स्वस्थ वातावरण बनाते है।

दलित साहित्य, भारतीय साहित्य की महत्त्वपूर्ण धाराओं में से एक है, जो ऐसे लेखकों द्वारा शुरू किया गया था, जिन्होंने अपने जीवन में जाति तथा वर्ग के आधार पर भेदभाव का अनुभव किया था। दलितों को उनके आघात व्यक्त करने, शर्मिंदगी और उनके साथ किए गए अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने के लिए साहित्य बहुत ही प्रभावी उपकरण बन गया है। दलित लेखकों में मुख्यरूप से मुलराज आनंद, हीरालाल, नीरव पटेल, कैलाश चंद चौहान, बिहारी लाल हरित, आनंद स्वरूप, धर्मवीर, कंवल भारती, ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. सुमानाक्षर, नामदेव ढसाल, राज वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाले, तेजपाल सिंह, गोपाल बाबा बलंकर, लक्ष्मण गायकवाड़, पाण्डेय बेचेन शर्मा, रमणिका गुप्ता, डॉ. सत्यप्रेमी, रवीन्द्र प्रभात, डॉ. एन. सिंह, कंवल भारती आदि शामिल है।

दलित लेखन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन और क्रांति लाना है। साथ ही जिस समाज में दलितों की मुसिबतों को उदासीनता से दूर रखा जाता है, उनके लिए स्वयं की एक पहचान बनाना हैं। वे सदियों से दुःखद और दर्दनाक अनुभवों से गुजरे है उनकी इच्छाएं और सपने तुच्छ हैं क्योंकि उनके लिए प्रगति की दुनिया के लिए सपने का कोई अधिकार नहीं था। वे उच्च जातियों के लोगों की सेवा करने और उनके लिए ही मरने के लिए थे। लेकिन बदलते समय के साथ दलित समुदाय में कुछ ऐसे साहित्यकार, लेखक थे, जिन्होंने अपने समुदाय के सदस्यों की आशंका और पिड़ाओं को महसूस किया। उन्होंने साहित्य के माध्यम से उनके दुःख–दर्द को आवाज देने को फैसला किया उनमें से एक 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिन्दी क्षेत्र के दलितों और वंचितो को अपनी आवाज प्रदान की हैं। उनकी आत्मकथा 'जूठन' उनके जन्म के आत्मकथात्मक लेख और 1950 के दशक के नए स्वतंत्र भारत में अस्पृश्य, दलित के रूप में अभिषेक, भारत के अंदरूनी सूत्र के

नजरिये से दलित जीवन के पहले चित्रणों में से एक है। उन्होंने 'जूठन' में साहसपूर्वक अपने जीवन के कटु अनुभवों का समावेश किया हैं। इसमें वाल्मीकि जी ने कहा है कि **'हजारों वर्षों से चली आ रही दलित जीवन की कथा हमारे समाज का कृष्ण पक्ष है।'** उन्होंने अपनी लेखनी से दलितों को एक नई दिशा प्रदान की है। इस कारण उनका योगदान सराहनीय है। उनका समकालीन भारतीय हिन्दी साहित्य में यह योगदान महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से दलित लेखकों में स्वाभिमान का संचार करते हुये दलित लेखन की धारा को एक नया मोड़ दिया हैं।

वाल्मीकि जी की आत्मकथा 'जूठन' में दलित समुदाय पूर्ण रूप से पीड़ित, अपमानित और उत्पीड़न का सामना करता है। उनके अनुसार दलित जीवन बेहद दर्दनाक है, अनुभवों से जलता है, अनुभव जो साहित्यिक सृजन में जगह खोजने का प्रबंधन नहीं करते। हम एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था में बड़े हो चुके हैं, जो दलितों के प्रति अत्यंत क्रुर, अमानवीय तथा करूणामय है।

वाल्मीकि जी 'जूठन' में जाति भेदभाव को दर्शाते हुए कहते है 'जाति' भारतीय समाज का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। उन्होंने बताया 'जाति' पैदा होने वाले व्यक्ति के नियंत्रण में नहीं है। यदि यह नियंत्रण में होता तो, मैं भंगी परिवार में क्यों जन्म लेता ? जो लोग खुद को इस देश की सांस्कृतिक विरासत को मानक कहते हैं, क्या उन्होंने तय किया कि वे किन घरों में पैदा होंगे – उच्च या निम्न ?

'जूठन' के द्वारा वाल्मीकि ने संदेश दिया है कि 'जाति' ही व्यक्ति की पहचान क्यों ?' अर्थात मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर ही उच्च स्थान प्राप्त करता है न कि जाति के आधार पर। इस सत्य को उद्घाटित करने के लिए उन्होंने 'जूठन' में कई ऐसे प्रसंग व घटनाएं निरूपित की है जो अत्यन्त ही सत्य सिद्ध होती है। जाति के कारण ओमप्रकाश वाल्मीकि को अपने जीवन में कई बार अपमानित एवं प्रताड़ित होना पड़ा था। उनकी आत्मकथा 'जूठन' में एक दलित जीवन के दर्दनाक अनुभवों का चित्रण किया गया है जिसकी महत्त्वपूर्ण घटनाएं तथा प्रसंग इस प्रकार है –

ओमप्रकाश वाल्मीकि एक दलित समुदाय के 'चूहड़ा' जाति से जिनका कार्य गंदगी साफ करना, झाड़ू लगाना, साफ–सफाई के कार्य करना, जूठन साफ करना, सूअर चराना आदि कार्य करना था, जिससे स्वयं को अपमानित महसूस करना होता था। ऐसे में उनके बचपन का माहौल ऐसा था कि चारों ओर गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि एक मिनट में साँस घुट जाती थी। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग–धडंग बच्चें, कुत्तें, रोजमर्रा के झगड़े आदि ऐसे गंदे वातावरण में वाल्मीकि का बचपन बीता। उस समय के प्रसंग वाल्मीकि जी ने 'जूठन' के द्वारा बताने का प्रयास किया है जो दलित जीवन की त्रासदी को अजागर करते है।

बात उस समय की है जब ओमप्रकाश वाल्मीकि के घर में छोटे–बड़े सभी सदस्य कोई न कोई काम करते थे। फिर भी उन्हें दो जून रोटी के लिए तगाओं के घरों में साफ–सफाई से लेकर खेती–बाड़ी और मेहनत–मजदूरी के सभी कार्य करने पड़ते थे। यहाँ तक की रात–बेरात बेगार करनी पड़ती थी जिसके बदले मे कोई पैसा या अनाज नहीं मिलता था। अगर बेगार करने से मना किया जाता था तो गाली–गलौच के साथ–साथ प्रताड़ना भी सहनी पड़ती थी। नाम लेकर पुकारने की किसी भी सवर्ण को आदत नहीं थी। इसलिए उनके लिए उम्र में बड़ा हो तो 'ओ चूहड़े' और उम्र में छोटा या बराबर हो तो 'अबे चूहड़े' जैसे नाम से सम्बोधित कर अपमानित किया जाता था।

उस समय जाति व्यवस्था के कारण उत्पन्न अस्पृश्यता का ऐसा माहौल था कि कुत्तें–बिल्ली, गाय–भैंस आदि जानवरों को छूना बुरा नहीं माना जाता था जबकि 'चूहड़े' का स्पर्श हो जाए तो पाप माना जाता था। इस तरह उन्हें सामाजिक स्तर पर इंसानी दर्जा प्राप्त नहीं था। वे सिर्फ उपभोग की वस्तु थे कि काम लिया और फेंक दिया। ऐसे अभाव, अस्पृश्यता, अपमान और शोषण के बीच उनका बचपन व्यतीत हुआ। उस समय सम्पूर्ण भारत में दलितों की ऐसी ही सामाजिक आर्थिक स्थिति थी।

वाल्मीकि जी ने अपने जीवन में कई कष्टपूर्ण अनुभवों को दर्ज किया है, जिनका उन्हें अपने बचपन और युवाकाल के दौरान सामना करना पड़ता था, क्योंकि वह 'चुहड़ा' समुदाय से थे। बचपन में जब ओमप्रकाश को प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश दिलाने के लिए उनके पिताजी गये तब उन्हें प्रवेश देने से मना कर दिया गया। क्योंकि वह एक दलित समुदाय से थे। बच्चे को शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से उनके पिताजी ने कई बार स्कूल के चक्कर काटे और हेडमास्टर से अनुरोध किया तब जाकर ओमप्रकाश को विद्यालय में प्रवेश मिला। विद्यार्थी जीवन में कक्षा की चार दीवारी के भीतर भी उन्होंने भेदभाव और अस्पृश्यता का अनुभव किया। उन्हें दूसरे बच्चों से दूर बैठना पड़ता था। उच्चवर्ग के विद्यार्थियों के द्वारा स्कूल में बिना किसी कारण के उन्हें पीटा जाता था। चूंकि वह एक अनुसूचित जाति समुदाय के थे।

इसी क्रम में ओमप्रकाश जब स्कूल में साफ–सुथरे कपड़े पहनकर जाते थे तो उच्चवर्ग के बच्चें उन्हें 'अबे चूहड़े का नये कपड़े पहनकर आया है, और जब पुराने कपड़े पहनकर जाते थे तो 'अबे चूहड़े का दूर हट बदबू आ रही है।' जैसे अपशब्द कहकर चिढ़ाते तथा अपमानित करते थे। ओमप्रकाश को बचपन में ही ऐसे शिक्षक मिले जिससे उन्हें शिक्षक नाम से ही घृणा होने लगी। चतुर्थ कक्षा में शिक्षक द्वारा बिना कारण के ही पिटाई करना तथा माँ–बहन की गालियाँ दी गई। यह उनके साथ इसलिए किया गया कि वे दलित समुदाय से थे।

विद्यालय में ही एक दिन उनसे शीशम के पेड़ से पत्ते–डालियाँ तुडवाकर झाड़ू बनवाया गया और लगातार तीन दिन तक पूरी स्कूल में झाड़ू से साफ–सफाई करवायी गई साथ ही तीन दिन तक पढ़ने भी नही दिया गया। आर्थिक अभाव और परिवार की नाजुक हालात में ओमप्रकाश को पाँचवी कक्षा से छठी में प्रवेश लेना पड़ा। ओमप्रकाश को बचपन में ही अपने विद्यार्थी जीवन में पारिवारिक जिम्मेदारी निभाने के लिए घर के सुअर चराने का कार्य भी करना पड़ा। इस तरह उन्हें अपने दलित जीवन की त्रासदी को सहन करना पड़ा।

विद्यार्थी जीवन में अभाव और आर्थिक विवशता के कारण ओमप्रकाश को मरे हुए पशु की खाल उतारकर मुजफ्फरनगर बाजार में बेचने भी जाना पड़ा। पशु बली के एक प्रसंग में – सूअर के बच्चे आर्थिक आय का प्रतीक है, जिसकी बली चढ़ाने का कार्य भी बालक ओमप्रकाश ने किया। परीक्षा के समय शिक्षक द्वारा जबरन बेगार भी करवाया गया। अतः अभाव और आर्थिक हालात के कारण ओमप्रकाश को बीच में ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी। तथा उन्हें तकनीकी प्रशिक्षण के लिए तैयार होना पड़ा। इस प्रकार उन्हे अपने विद्यार्थी जीवन में भी दलित जीवन की त्रासदियों का सामना करना पड़ा।

तकनीकी प्रशिक्षण पूर्ण होने के बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि को रोजगार मिल गया और वे मुम्बई चले गये वहाँ की एक घटना के

बारे में बताते है कि वहाँ वे सविता नाम की लड़की के सम्पर्क में आये। सविता का झुकाव ओमप्रकाश की ओर हुआ। जब ओमप्रकाश ने बेइन्तहा प्यार और विश्वास के कारण सविता को अपनी जाति बताई तब उनके बीच फासला बढ़ गया और उसके बाद वे दोनों कभी नही मिले। सविता ने पारंपरिक रूप से सही और न्यायिक रूप से भेदभाव का बचाव किया। इस तरह से कई बार उनकी जाति ने उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचायी।

विवाह के पश्चात जब ओमप्रकाश चंद्रपुर से देहरादून आये तब उन्हे अपने सरनेम 'वाल्मीकि' के कारण रहने हेतु किराये के मकान की समस्या हुई। महीना भर इधर–उधर भटकने के बाद कानपुर में डॉ. संघवी का मकान किराये पर मिला। इसी मकान में भोलाराम खरे से आत्मीयता, अपनापन बढ़ा। उनकी बेटी मंजु ओमप्रकाश की मुहबोली बहन बनी। शादी के समय बड़े भाई की जिम्मेदारी ओमप्रकाश ने ही निभाई, लेकिन 'वाल्मीकि' सरनेम के कारण शादीकार्ड में उनका नाम नहीं लिखा गया। इस तरह से ओमप्रकाश के लिए 'वाल्मीकि' सरनेम आत्मगौरव, स्वाभिमान का पर्याय बन चुका था। संघर्षों और सरोकारों का साथी बन गया था।

ओमप्रकाश वाल्मीकि को कई बार अपने सरनेम 'वाल्मीकि' को लेकर बाहर के लोगों से तो परेशान होना पडत़ा था साथ ही साथ अपने लोगों से भी परेशान होना पड़ा। कई बार सरनेम को लेकर ओमप्रकाश के घर–परिवार में चर्चा हुआ करती थी। जब एक बार उनकी पत्नी चंदा ने उनके सरनेम को लेकर बहस की क्योंकि वह भी इस सरनेम को आत्मसात नही कर पाई तब चंदा ने कहा – 'यदि हमारा कोई बच्चा होता तो मैं उसका सरनेम जरूर बदलवा देती।' इस तरह 'वाल्मीकि' को अपने सरनेम को लेकर कई बार अपने घरवालों से भी शर्मिंदा होना पड़ा।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन की ऐसी अनेक घटनाएं एवं प्रसंग है, जो उन्हें अपमानित, प्रताड़ित एवं शर्मिंदा करती है। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'जूठन' में दलित जीवन के दर्दनाक अनुभवों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। वे कहते है जो भारतीय समाज सभी प्राणियों में एक ही परमतत्त्व के दर्शन करने का दम्भ भरता है। वह गुण और कर्म के आधार पर आधारित वर्ण व्यवस्था का इतना कट्टर कैसे हो सकता है। कि निम्न वर्ण या जाति में जन्म लेने वालों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ना तो दूर 'अछूत' मानकर छूना भी पाप समझता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित वर्गों के लिये भारतीय समाज की सीढ़ीनुमा व्यवस्था को तोड़कर समतल राह बनाने की भरपुर चेष्टा की है।

अपनी आत्मकथा 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने एक दलित परिवार की शिक्षा के बारे में वर्णन किया है, जो समाज में शिक्षा और स्थिति के लिए संघर्ष कर रहा है। इस प्रकार यह दलित परिवार की पहचान कराने वाली कहानी है। 'जूठन' एक दलित जीवन की आत्मकथा के रूप में वास्तविक जीवन की कहानी के गुणों को दर्शाती है। लेकिन इस काम की प्रासंगिकता एक आत्मकथा की सीमा से परे है क्योंकि यह अछूत या दलित समुदाय के लिए एक प्रतीक के रूप में खड़ा है। वाल्मीकि जी ने 'जूठन' में दलित साहित्य के उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से सामना किया तथा जीवन के सपने को पूरा करने के लिए सभी बाधाओं के साथ मल्लयुद्ध किया था।

ओमप्रकाश के साथ 'वाल्मीकि' शब्द जुड़कर जाति हीनता का नहीं बल्कि उनकी अपनी जातीय अस्मिता और पहचान का प्रतीक बनकर उभरा है, जो वर्ण–व्यवस्था, द्वैष और घृणा को नाकाम कर रहा है। स्पष्ट है कि यह आत्मकथा दलित जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थितियों, जाति व्यवस्था से उत्पन्न छुआ–छूत के दंश को, यंत्रणाओं, यातनाओं और अपमान के विभिन्न पक्षों को उभारते हुए 'वाल्मीकि' सरनेम के जातीय–बोध की आत्मस्वीकृति की लम्बी यात्रा तय करके दलित जीवन की त्रासदी की पहचान कराने में अपनी सार्थकता सिद्ध करती है।

इस आत्मकथा का अंत ओमप्रकाश के 'वाल्मीकि' सरनेम को लेकर उठे विवाद के साथ उनके आत्मसंघर्ष से होता है और यह सरनेम उनके संघर्षों और सरोकारों का साथी बन गया था, इसलिए उन्हें आत्मीय भी लगा था। कुछ मित्रों को 'वाल्मीकि' सरनेम आकर्षक लगा है तो कुछ को 'जाति' बोध की हीनता का। सच तो यह है कि आज भी हमारे देश में 'जाति' के साथ ही मान–सम्मान जुड़ा हुआ है। क्योंकि जाति का नाम जानते ही लोगों का व्यवहार और आचरण दोनों ही बदल जाते है। ऐसा कहने वालों में अधिकतर हमारे ही जाति के पढ़े–लिखे लोग, परिवारजन, रिश्तेदार होते है। तथाकथित दलित साहित्यकार भी।

संदर्भ सूचीः

1. आलेख–डॉ. पवन कुमार शर्मा, दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास
2. आलेख–दलित साहित्य (http://hi.wikipedia.org)
3. ओमप्रकाश वाल्मिकी, आत्मकथा 'जूठन'
4. आलेख–डॉ. पवन कुमार शर्मा, दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास
5. कंवल भारती, दलित साहित्य की अवधारणा
6. आलेख–जयसिंह मीणा, दलित साहित्य : शालीनता का प्रश्न
7. आलेख–डॉ. पवन कुमार शर्मा, दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास
8. आलेख–दलित साहित्य आंदोलन : दलित साहित्य का मूल
9. रवीन्द्र प्रभात, ताकि बचा रहे लोकतंत्र, प्रकाशक–हिन्द युग्म, नई दिल्ली
10. डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
11. आलेख–डॉ. श्रीमती तारा सिंह, दलित विमर्श
12. आलेख–दलित विमर्श, इण्टरनेट से, 13 नवम्बर, 2014